नीले पंखोंवाली लड़कियाँ

हुश्न तवस्सुम निहाँ

नीले पंखोंवाली लड़कियाँ

लड़कियाँ बड़ी हो रही हैं। बड़ी होते हुए वे हँस रही हैं, खिलखिला रही हैं। गुनगुना रही हैं। उन्मुक्त हो कर दौड़ रही हैं। जैसे बेवक्त आगे निकल कर पाला छू लेना चाहती हों, प्रेम-पत्र लिख रही हैं। पढ़ने की मेज पे वे सबकी नजर बचा कर कुछ पढ़ लेती हैं फिर सुर्ख कलियों सी मंद-मंद मुस्कराती हैं। छत पे पतंगे उन्हें चूम-चूमकर उड़ जाती हैं। वे हवाओं में चुनरिया लहरा देती हैं -

https://www.hindiadda.com/neele-pankhonvali-ladakiyaan/

उड़ें जब जब जुल्फें तेरी...

आसमान छूने की फिराक में वे बादलों की सवारी कर रही हैं। बेतहाशा दौड़ रही हैं... घर छोड़-छोड़ भाग रही हैं। भागी ही जा रही हैं, वे पकड़ में नहीं आएँगी, बिल्कुल नहीं... नहीं... नहीं...।

'आज मैं आजाद हूँ दुनिया के चमन में...'

उन्हें मालूम है वे भागती रहेंगी। लेकिन इसी भागते रहने के लिए वे भाग रही हैं... निर्भय... निःशंक... निःशब्द...।

रजिया का पैर थप्प से कीचड़ से भरे गड्ढे में धँस गया। उसने छीः-छीः की मुद्रा में मुँह बनाया फिर झटके से पैर को खींचा और सूखी जमीन पर रगड़ने लगी। हर कोण से रगड़ कर जब थोड़ा आश्वस्त हुई तो पैर में चप्पल डाल कर कुछ फासले पर लगे शीशम के नीचे जा बैठी और चहुँ दिशाएँ टटोलनी लगी।

'कहाँ चला गया, ट्रेन का वक्त तो हो गया। वह कभी घड़ी देखती कभी मोबाइल पर खटपट करने लगती, मोबाइल पर एक काँटेदार आवाज उभर आती, 'इस समय उपभोक्ता के नंबर पर कॉल संभव नहीं है, कृपया...' तो वह झुँझला जाती।

'हुँ...ह... झुट्ठी कहीं की...'

फिर रीडायल होता फिर वही जनानी आवाज में उत्तर, उसने सिर थाम लिया।

'अब क्या होगा...?'

चलो स्टेशन ही चल कर देखते हैं, शायद वहीं बैठा हो। मोबाइल तो खैर ऐसे मौकों पर दगा दे ही जाते हैं। नेटवर्क की घोर समस्या, चौबीसों घंटे। साँझ का अँधेरा गहराने लगा था। वह लंबे कदमों से स्टेशन की तरफ बढ़ गई। किंतु कहाँ ? स्टेशन पर पहुँच कर भी वह जैसे खोए हुए बच्चे की तरह इधर-उधर भीड़ में झाँकती रही।

'कहाँ गया... कहाँ चला गया...?'

चलो, तब तक टिकट ही ले लेती हूँ। मगर निगाहें यहाँ-वहाँ दौड़ रही थीं।

'कहाँ चला गया... कहाँ चला गया... ट्रेन आ कर चली चली गई तो...?'

'हाँ मैडम... कहाँ का टिकट चाहिए...?'

'ज...जी...?'

ये तो सोचा ही नहीं था। बौखला गई, बाबू की हथेली से पैसा उठा कर वह लाइन से अलग हो गई। बाबू व लोगों की निकृष्ट निगाहें उसे घूरती रहीं। वह पुनः प्लेटफॉर्म पर जा कर दूर, शौचालय के समीपवाली सीट पर आँखें बंद करके बैठ गई। साथ में जो बैग था उसे सीने से लगा कर भींच लिया।

अब तो उसे घर के लोग ढूँढ़ने चल पड़े होंगे। कितना लंबा-चौड़ा इक्कीस पन्ने का खत लिख कर आई थी वह। अच्छा-सा लेक्चर पिला कर आई थी घरवालों को। ये भी लिख दिया था कि उसे कोई तलाश ना करे। आज तो सिर्फ शरीर से जा रही हूँ, वरना तो बहुत पहले जा चुकी हूँ। दुनिया की आँखों से ओझल हो चुकी हूँ। किसी को मेरी जरूरत नहीं, मैं खुद घर में अजनबी सी फिरती हूँ। पिता के ही आँगने में पराई... पराई... लड़की जात की तो पैदाइश ही अजाब। नौकरी के लिए जब भी अप्लाई किया।

'नहीं... नहीं... लोग क्या कहेंगे...' अब्बू ने साफ कर दिया।

'शादी...?'

बड़ी फूफी के बड़े बेटे से। कितना माना हुआ बिजनेसमैन है। मोटरगाड़ी, बँगला... ऐशो-इशरत...

लोग समझते क्यूँ नहीं। वह सन्नाटे में थी। प्यार हमें करना है, शादी भी हमें ही करनी है। बीच मे ये कौन होते हुक्म बघारनेवाले। जबर्दस्ती शादी हो सकती है। जबर्दस्ती प्यार थोड़े ही हो सकता है। जिससे वे चाहें, उसी से प्यार करें। जिससे वे कहें उसी से शादी... ये कौन सी तानाशाही है। क्या ये सब करने से होता है? ये तो खुद-ब-खुद होने की चीज है। रानी ने हार मान ली थी। उसका क्या हश्र हुआ। अशरफ कितना चाहता था उसे। कैसे महँगे-महँगे तोहफे भिजवाया करता था। जब रानी बीमार हुई तो अशरफ तो बिल्ला गया था। कैसे रो-रो के उसकी सेहतयाबी की दुआएँ किए जा रहा था। तब कितना रश्क हुआ था रानी की किस्मत पर... 'भई, आशिक हो तो ऐसा...' किंतु वो रश्क, रश्क रहा कहाँ...?

'छू...मंतर...'

रानी के बाबा ने साफ मना कर दिया, 'नीची जाति में शादी नहीं होगी, जाना है तो मेरी लाश पे चल कर जाओ...'

हफ्ता-दस दिन बाद ही हाथ-पाँव छान कर जबरन उसका निकाह खानदान में ही इस्तिमा में पढ़वा दिया गया। वह सीने पे पत्थर लिए चली गई। जहाँ आबिद के धक्के-मुक्के, लात-घूँसे, उसका इंतजार कर रहे थे। वह लाश बन कर रह गई। अब जनाजा निकलना बाकी था। दफनाया जाना था। एक रोज अशरफ उसके दरवाजे पर ही आत्मदाह कर गया। आबिद खौल गया। रानी को उस रोज दूना पीटा। वह पिटी-पिटाई भीतर ही भीतर हुलसती रही। फिर एक दिन सुना गया वह आबिद को जहरा के खुद भी जहर खा के अल्लाह को प्यारी हो गई। आखिरी वक्त सही, मगर ये काम उसने अच्छा किया। सिर्फ वही जाती तो कल कोई दूसरी रानी आ कर उसके लात-घूँसे झेलती। अच्छा हुआ कि 'शैतान' को साथ लेती गई। मगर ये क्यूँ...? ये कैसी कैद... ये कैसी बंदिशें... कैसी रिवायतें... किस धर्म ने कहा कि विवाह अपने ही धर्म और अपनी ही जाति में करो... किस किताब में लिखा है कि अंसारी, अंसारी में ही जाए... या मुसलमान, मुसलमान में ही, और हिंदू-हिंदू में... रानी अलबत्ता कुत्ते की मौत मरी, मगर उसके अब्बू को तो राहत मिली... मगर इस राहत का मतलब?

उससे गनीमत तो रहीं शीबा, थोड़ी-सी हिम्मत कर ली और आज चाँद, तारे आदल-बादल सब बाँहों में भरे बैठी है। आसमान की मलिका है वह। पूरे जहान की शहजादी, तौसीफ नद्दाफ था, शीबा सैय्यद। बिल्कुल आग और पानी, जमीन-आसमान का फर्क , सदी-सदी का फासला, दोनों जमीन आसमान से..., जामुन सा तौसीफ..., फालसा सी शीबा..., करौंदों से खट्टे लोग... दाँतों के नीचे ऊँगलियाँ। शीबा ने क्या देखा... क्या देखा... क्या देखा...।

'तौसीफ की गुलाबी आवाज...'

'क्या गाता है...'

'क्या हँसता है...'

'क्या बोलता है...'

शीबा खुश, तो सब खुश, दुनिया खुश, अड़ियल समाज को ठेंगा दिखाना ही मुनासिब है। ख्वाहम ख्वाह ही तो...

अलबत्ता,

उसके पैरों में विगत फँस-फँस जाता।

मगर तौसीफ की जाँ निसारी सातवें आसमान पर ले जाती।

जिस दिन तौसीफ के साथ भागी।

अम्मा ने खूब पुकारा।

'शीबा... अरे ओ शीबा...'

शीबा हो तब ना...।

मूसलाधार बारिश में भीगती-भागती पंजों के बल वह उड़ गई। अम्मा की आवाज गूँज रही थी।

ये भागी हुई लड़कियाँ ना..., पंखियों जैसी होती हैं। जाने कहाँ-कहाँ से उड़ आती हैं फिर चिराग की लौ पे थिरकती हुई मर मिटती हैं' सब सहेलियों के घर छाने गए। शहर खँगाला गया। मगर शीबा के नक्श-ए-पा तक ना दिखाई पड़े कहीं। शीबा तो कलकत्ते में थी। शीबा पर कोड़े बरसानेवाले भाई, कोसते रहनेवाले अब्बा, झगड़ालू भाभियाँ और झंखनेवाली अम्मा अपनी झूठी इज्जत की हजामत बन जाने की शिकायत लिए मातम जदा थीं। सभी इरादा रखते थे।

'शीबा कैसे भी एक बार आ तो जाए सामने...'

भाई मुट्ठी भींच रहे थे।

'कोई एक बार बस एक बार उसे सामने ले आए...'

हालपुर्सी में शीबा के घर गई वह मन ही मन शीबा को शाबासी देती सूरः पढ़-पढ़ खुदा से कहे जा रही थी।

'शीबा को वापिस ना भेजना... शीबा को वापिस न भेजना अल्लाह...'

तभी उसके मोबाइल पर शीबा का नंबर चमका था। उसका जी उछाल भरने लगा। कोई जान 'ना' जाए कि शीबा कॉल कर रही है। उसने 'टप' से स्विच ऑफ कर दिया था। और उल्टी-सीधी भागी। शीबा की अम्मा तो कह रही थीं उसके मोबाइल का स्विच ऑफ है... भागो... वरना खैर नहीं।

जाते-जाते वह सबको सबकी औकात बता गई थी, खूब लंबा सा खत लिख कर।

आज...आज वह भी वही कदम उठाते नहीं झिझकी थी। क्यूँ सही जाए किसी की धौंस... कल रानी की तरह कुत्ते की मौत मरूँगी तो कौन सामने आएगा? अम्मा, अब्बा...? भाई-भौजाई...? या पड़ोसी...? कोई भी नहीं।

इनकी झूठी शानो-शौकत पर खुद को बलि क्यूँ चढ़ाऊँ? क्यूँ निछावर करूँ अपनी फूल सी जिंदगी...? क्यूँ ना मैं शीबावाला रास्ता अपनाऊँ... अपनी जिंदगी बचाऊँ... मुहब्बत की आबरू रखूँ... वफाओं पे मर मिटनेवाले अपने अज दाद को शर्मिंदा ना होने दूँ, उनका मुँह उजाला करूँ...

सहसा खसर-पसर की आवाज पर आँखें खुल गईं। सामने एक बंदर अजीब-अजीब मुद्रा बनाए जैसे उसे चिढ़ा रहा था। कभी जाँघ खुजाने लगता कभी बगल। उसने घिना कर उधर मुँह फेर लिया। फिर सयास घर का हो-हल्ला जेहन पे छाने लगा। अब तक उसका लंबा-चौड़ा खत तीन-चार बार या कई बार पढ़ा जा चुका होगा। अम्मा छाती पीट रही होंगी। अब्बा अम्मा को नई-नई आविष्कृत गालियाँ दे रहे होंगे। भाई गुस्से में मुट्ठियाँ भींच रहे होंगे...

'मिल जाए तो खा डालूँ...'

खाला ने सुझाया होगा।

'तलाश कर चाकू से गोद डालो फिर बोरे में भर कर नदी में बहा आओ...'

'हि-श-श्...'

लानत है उस जगह पर जहाँ खुशियाँ मनाने पर बंदिशें हों। जहाँ साँसें पूछ-पूछ कर लेनी पड़ती हों। हर बात के लिए इजाजतनामा पेश करो, हर बार उसे ठुकरा दिया जाए, सिर्फ इसलिए कि मैं लड़की हूँ... क्या मिलता वहाँ... सिर्फ लड़की होने के दंश...

'हाय... लड़की...'

लड़की ना हुई मेहतरानी हो गई।

मैं तो जा रही हूँ हिंदू के साथ

छप्पन छुरियाँ चलेंगी हिंदू-मुस्लिम जंग छिड़ेगी

मेरी बला से। सब उल्लू हैं।

बेवकूफों की दुनिया थोड़े ही बसाई जाती है।

'हमने घर छोड़ा है, रस्मों को तोड़ा है...'

गुलमोहर कैसा मुस्करा रहा है। जैसे आशीष दे रहा हो। सीने से लगा रहा हो। अब ये शहर छूट के रहेगा... छूटेगा... छूटेगा... छूटेगा... छूटने दो... हाँ...नहीं तो...

आँखों पे झप्प से पर्दा गिरा।

'आऊ-च...'

धड़कनें पनचक्की हो गईं।

'ये क्या...?' दाँत भिंच गए। कहीं भाईजान तो नहीं... कहीं अब्बा तो नहीं... आँखों पर रखी हथेली कसती जा रही थी। वह हाँफे कि हाँफे ना, कि होंठों से दो फूल चिपक गए।

'हाय...'

'रोहित...'

'इत्ती देर'

सामने चाँद मुस्करा रहा था। चलोगे ना...! मैं आ गई... रोहित की बाँह थाम कर सँभलती हुई खड़ी हुई... कि बाजू से दो बुर्कानशीं औरतें बड़बड़ाती हुई निकल गईं।

'अल्लाह जाने ये भागी हुई लड़कियाँ जाती कहाँ हैं कि लौट कर मिलती ही नहीं।'

वह डर कर रोहित के पीछे खिसक गई।

'कहा था ना, बुर्का डाल के आना...'

'अब क्या करूँ...?' वह अपनी गलती स्वीकारती रोहित से चिपकती हुई बोली...

'कुछ नहीं, सिर ढँक कर, भीड़ की तरफ से तिरछी हो कर बैठ जाओ...'

फिर वह मोबाइल पर नंबर डायल करने लगा।

'हफीजा, मैं रोहित बोल रहा हूँ... रजिया मेरे साथ है। तुम ऐसा करो जल्दी से कोई बुर्का ले कर रेलवे प्लेटफॉर्म पर आ जाओ। ध्यान रहे किसी को भनक ना लगे। यहाँ पहुँचते ही फोन करना...'

'हा...ह...रोहित...' रजिया का मुँह का खुला रह गया। आँखें फाड़े देखती रह गई।

'ऐसे क्या देख रही हो... तुम बेवकूफी कर गईं। आजकल पचास फीसदी स्मगलर बुर्के का सहारा ले कर धन कमा कर रहे हैं... खासकर स्मगलर औरतें... कुछ भी हो यार ये बुर्का बड़ी सेफ और कामयाब चीज है...'

चाँद धीमे-धीमे नीचे उतर रहा था। रात सितारों से भरी जा रही थी। ट्रेन का अता-पता नहीं।

कि मोबाइल जीवंत हुआ।

'हाँ हफीजा, बोल रहा हूँ... शौचालय की तरफ...।'

दाईं तरफ से हफीजा लंबे-लंबे डग भरती चली आ रही थी। पास आ कर इधर-उधर चौकस निगाहों से देखा, 'लो... जल्दी पहन लो। दो बार तुम्हारी अम्मी का फोन आ चुका है। बात फैल रही है। खैरियत समझो तो बस से निकल जाओ...'

'...'

'बाथरूम में जाओ...'

'...'

बुर्का थाम कर लंबे-लंबे डग भरती हफीजा निगाहों से ओझल हो गई। जाते-जाते रोहित के दाएँ कान की तरफ झुककर इतना जरूर फुसफुसाई थी -

'रोहित भाई..., हम हैं राही प्यार फिर मिलेंगे चलते-चलते...।'

https://www.hindiadda.com/neele-pankhonvali-ladakiyaan/